International Research Journal of Human Resource and Social Sciences
ISSN(O): (2349-4085) ISSN(P): (2394-4218)
Impact Factor 5.414 Volume 5, Issue 8, August 2018
Website- www.aarf.asia, **Email** : editoraarf@gmail.com

उपासनात्मक पद्धति में राग ध्यान का दार्शनिक चिन्तन

– राकेश कुमार दास
शोध–छात्र
संगीत एवं नाट्य विभाग, ल0 ना0 मि0 वि0, दरभंगा।

ध्यान शब्द दो अर्थों में प्रयुक्त होता है – (1) चित को शामिल करने की क्रिया और (2) वह संसाधन, जिसके माध्यम से चित्त को समाहित किया जा सके। संगीत में ध्यान को दूसरे अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है। इस प्रकार जो ध्यान बतलाये गये हैं उनमें चित्त को समाहित करने की क्रिया तो है लेकिन यदि कहा जाय तो वह विशेष रूप से चित्त–सम्मोहित करने का संसाधन है। इस तथ्य को दामोदर पंडित ने अपने ग्रंथ 'संगीत दर्पण' में राग ध्यान अध्याय के अंतर्गत स्पष्टतया उल्लेख किया है। इस का स्पष्ट दर्शन कहीं–कहीं इस राग–ध्यान में नहीं मिलता परंतु ऐसे देवता का वर्ण अवश्य मिलाता है, जिनसे उस राग के रस का पता यूँ ही चल जाता है, उदाहरण के लिए यदि देखा जाय तो भैरव राग का ध्यान शिव रूप में मिल जाता है।

राग–ध्यान की एक विशिष्ट प्रविधि अपनायी जाती है जिसके अंतर्गत गायक सर्वप्रथम अपने गायन के क्रम में राग के रस विशेष एवं संबंधित देवता का ध्यान–चित्त होकर करता है, फिर धीरे–धीरे उस देवता आ आवाहन करता है। इसके पश्चात् मानसिक ध्यान वाचिक ध्यान के रूप में परिवर्तित हो जाता है।

उपासना में जप के तीन रूप होते हैं –

(1) मानसिक, (2) उपांशु और (3) नादात्मक

(1) मानसिक – मानसिक के अंतर्गत गायक मात्र राग के देवता को अपने चित्त में समाहित करता है।

(2) उपांशु – उपांशु में गायक द्वारा अंदर ही अंदर गुनगुनाकर आवाहन किया जाता है।

(3) नादात्मक – नादात्मक में गायक द्वारा नादमय रूप को स्पष्ट किया जाता है।

© Associated Asia Research Foundation (AARF)
A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International e-Journal - Included in the International Serial Directories.

तुलनात्मक दृष्टि से यदि विश्लेषण किया जाय तो सनातन वैदिक धर्म में उपासनात्मक देव की पत्थर की मूर्ति का अबलम्ब रूप में बनायी जाती है, परंतु राग के देवता तो भावमूर्ति है, उन्हें पत्थर की प्रतिमा के रूप में मूर्तिवत नहीं किया जा सकता। यह तो चित्र में मात्र समाहित किये जा सकते हैं। राग तो नादाधारित है, वह गतिमान है और गतिमान को चित्त में ही ध्यान करना संभव है।

संगीत एक गत्यात्मक क्रिया है, यह गतिमान है। उसके देवता को चित्रों में रंगों के माध्यम से ही दिखाना संभव है, उसके देवता को एक पत्थर के विग्रह में रूप या आकार में दिखाना असंभव है। अतः घ्यान में राग एवं रस दोनों को ही मूर्तिमान किया जा सकता है। राग ध्यान के अंतर्गत राग तोड़ी का ध्यान वासक सज्जा नायिका के रूप में किया जाता है। जयदेव के गीत गोविन्द में जिस नायिका का वर्णन है, वह भी वासक सज्जा नायिका की तरह ही है। वास्तव में चित्रों का निर्माण रागों के ध्यान पर ही आधारित है। सर्वप्रथम संस्कृत में राग ध्यान का वर्णन किया गया, तत्पश्चात् अन्य भाषाओं में वर्णित है। ब्रजभाषा में राग ध्यान का चित्रण प्रचुर मात्रा में मिलते हैं।

अब यहाँ राग–ध्यान परंपरा में निहित दर्शन पर विचार जब हम करते हैं तो कुछ तथ्य सामने इस प्रकार आते हैं। दार्शनिक विचारों को प्रतिपादन करने के क्रम में आचार्यों ने दैनिक जीवन में किये जाने वाले व्यवहारों से ही तत्व ग्रहण किये और जीवन को समुन्नत बनाने के उद्देश्य से उसका प्रयोग किया। वास्तव में शास्त्रों के ज्ञान का उपयोग हम व्यवहार तथा उपासना के लिए ही किया करते हैं और इसके लिए एकाग्रता या अवधान या ध्यान आवश्यक होता है। ऐसे उपासनात्मक मार्गों को अपनाने में प्रारंभ में निर्गुणोंपासना की गयी। परंतु, इसमें कठिनाई आने लगी और इस कारण हमें दूसरा मार्ग अपनाने के लिए बाध्य होना पड़ां यह दूसरा मार्ग था सगुणोपासना का मार्ग। योग करने के लिए मन, बुद्धि, चित्त की शुद्धि और इन्द्रिय–निग्रह के बाद मूर्ति आदि पर ध्यान करने की विधि है। संगीत में भी 'राग' को ब्रह्म रूप में अदृश्य तत्व माना जाता है। पर इन अदृश्य रूप ब्रह्म को ध्यान करना तथा उस पर मन को एकाग्र करना असंभव सा प्रतीत होता था। इन्हीं समस्याओं के समाधान के लिए रागों के भी ध्यान के लिए रागों की कल्पना देवी–देवताओं के रूप में करके उसे अपनाने की परंपरा का आरंभ हुए जैसा कि योग दर्शन और योग शास्त्रों में ध्यान के लिए विदित है।[1]

ध्यान अष्टांग योग का सातवाँ अंग है और इसे यम–नियमादि अंगों का विधिवत् अभ्यास करने के बाद किया जाता है। समाधि ध्यान की ही अंतिम अवस्था है। किसी स्थान विशेष पर स्थिर किये हुए चित्र को ध्यान करते समय किसी एक भावना का सहारा लेना पड़ता है और उस भावना की अनुभूति को अक्षुण रखते हुए अगले क्षण को भी संरक्षित रखना पड़ता है। इस प्रक्रिया को ही एक तानता कहते हैं। इस प्रकार

की एक तानता जब प्रबल होने लगती है, तब वैसी स्थिति को 'ध्यान' कहते हैं। जो ध्येय विषय में मन को आशक्त करता है, ध्येयात्मक वस्तुओं को ही निरंतर देखने की चेष्टा करता है। अन्य किसी वस्तु या पदार्थ को नहीं जानता, इस तरह की स्थिति जब साधक में पैदा होतीहै, तब ऐसी अवस्था को ध्यान कहा जाता है।[2]

ध्यान के भी कई रूप हैं, जिसे इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है –

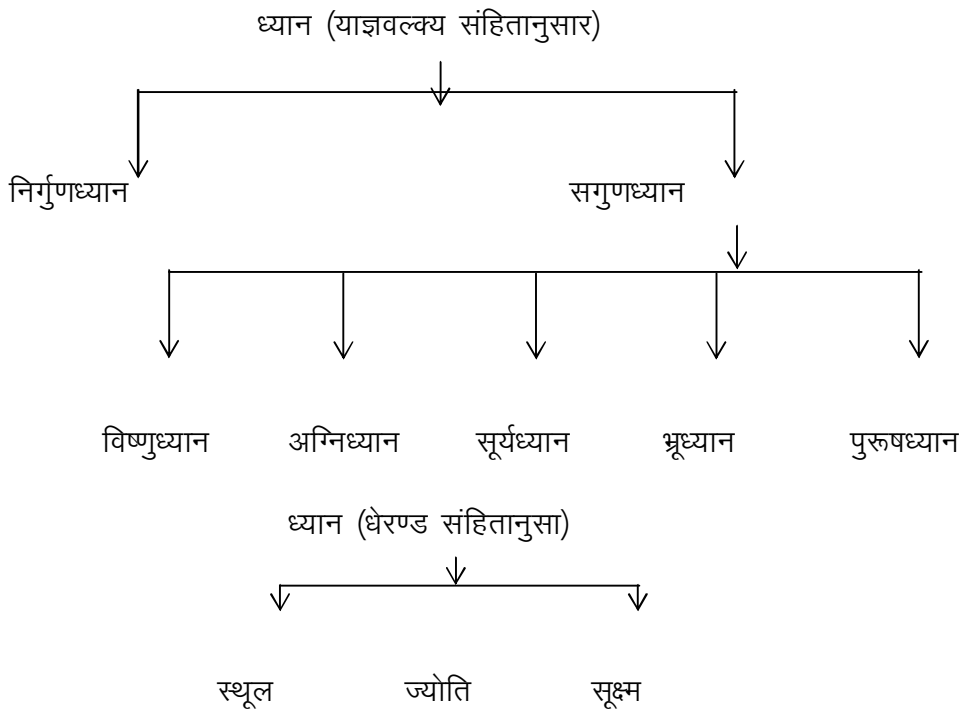

(1) निर्गुण ध्यान :– याज्ञवल्क्य संहिता निर्गुण ध्यान का वर्णन इस प्रकार मिलता है – शुद्ध, कूटस्थ, आनंदस्वरूप, अमूर्त, अज, अव्यय, अंतर्वःस्थिति, सर्वतोन्मुख, सर्वद्रष्टा जैसे परब्रह्म परमात्मा को तदात्म्य भाव से 'ध्यान' करने को ही निर्गुण ब्रह्म की संज्ञा दी गयी है।

(2) सगुणध्यान :– शरीर के भीतर अवस्थित चक्रों पर किये जाने वाले ध्यान या किसी तत्व का पदार्थ पर किये जाने वाला ध्यान सगुण ध्यान कहलाता है। इस प्रकार के ध्यान के कई भेद हैं। 'ध्यान' से ही शरीर रूपी घर में आत्मज्ञान रूपी दीपक जल सकता है, जो आगे चलकर सविकल्प या निर्विकल्प समाधि का रूप ले लेता है।

सगुण ध्यान के पाँच प्रकार हैं –

(1) विष्णु ध्यान :– शरीर में अवस्थित मणिपुर चक्र (कमल), कंठ स्थान से निकलता है। प्राणायाम करने के समय ऊर्ध्वमुख को विकास करते हुए उक्त कमल पर शंख–चक्र–गदा–पद्मधारी नीलवर्ण, पीताम्बर धारी प्रसन्न एवं मन्दस्मित से युक्त ऐसे श्री विष्णु की स्थापना की जाती है और उस विष्णु को एकाग्रमन 'वह मैं ही हूँ' के रूप में किया जाता है।

(2) अग्नि ध्यान :– अपने हृदय कमल में तेजोमयवृत से आवेष्टित तथा निर्वात दीप की तरह ज्वालायें निश्चल के रूप में हों, इस प्रकार के वैश्वानर नामक महाग्नि में रहने वाले परमात्मा की कल्पना की जाती है और उसका ध्यान किया जाता है।

(3) सूर्यध्यान :– चारों ओर, सर्वलोक साक्षी, संसार को आलोकित करने वाला आत्मरूप भगवान सूर्य की कल्पना हृदय में करते हुए ध्यान किया जाता है।

(4) भ्रूध्यान :– शरार के बीचले भाग से लेकर सिर (मस्तक) तक निश्चल रूप में अवस्थित, अव्यक्त आत्मा की दोनों भृकुटियों के मध्य में कल्पना करके ध्यान किया जाता है।

(5) पुरूषध्यान :– दशवें द्वार में अवस्थित सहस्त्र दलों वाला एक अधोमुख कमल है, उससे अमृत धाराएँ नीचे की ओर गिर रही है, ये धाराएँ हृदय में अवस्थित तेजमय पुरूष के शरीर पर पड़ रही है, इस प्रकार की अमृतधाराओं से अभिसिंचित परम ''मैं ही हूँ'' का ध्यान हृदय कमल में किया जाता है।

धेरण्ड संहिता में ध्यान के तीन प्रकार बतलाये गये हैं –

1. स्थूल – इस प्रकार का ध्यान मूर्तिमय हुआ करता है।

2. ज्योति :– इस प्रकार का ध्यान तेजोमय हुआ करता है।

3. सूक्ष्म – इस प्रकार का ध्यान बिन्दुमय हुआ करता है।

कहने का अभिप्राय यह है कि यदि हम एकाग्रचित से तनमयता के साथ ध्यान करते हैं तो ध्येय का साक्षात्कार होता है। इसी कारण से संगीत साधकों ने भी तद् रागों का ध्यान करके तदद् रागों के देवता के रूप में स्वीकार किया था। इस प्रकार यह सिद्ध होता है कि शास्त्रीय ग्रंथों से उपलब्ध रागध्यानों एवं उसके देवताओं का विवरण अकारण नहीं है, उसके अपने कतिपय दार्शनिक महत्व हैं।[3]

वास्तव में भारतीय संगीत की ऐसी विलक्षण विशिष्टताएँ अन्यत्र दुर्लभ है। हमारे देश में संगीत के ग्रंथकारों की ऐसी मान्यता है कि प्रत्येक राग का एक नादात्मक रूप है। इतना ही नही, उसके अपने एक भावमय रूप भी है, जो उस राग के अधिष्ठाता देवता या अधिष्ठात्री देवी है। वह देवी या देवता एक अलौकिक लोक में निवास करते हैं। यदि हम उपयुक्त समय पर एकाग्र मन से शुद्ध रूप से उनका ध्यान करते हैं, तो वह निश्चित रूप से इस आवाहन से उस राग विशेष में अवतरित हो सकते हैं, ऐसी मान्यता संगीत के ग्रंथकारों के हैं और यही मान्यता हमारे यहाँ के दर्शनशास्त्र के शास्त्रकारों का भी है।

संदर्भ–

1. मुसल गाँवकर, विमला भारतीय संगीत का दर्शनपरक अनुशीलन, पृ0 83, संगीत रिसर्च अकादमी, कलकत्ता, 1995

2. तिवारी किरण (डॉ0), पृ0 287, कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, नयी दिल्ली, 2008

3. पातंजल महाभाष्य, संपादक–शास्त्री वासुदेव अभ्यंकर, पृ0 104, डेक्कन एडुकेशन सोसायटी, फर्ग्युसे कॉलेज, पुणे, 1938